THE TIMES OF INDIA

*Date: 10-01-26*

# Where Life Is

## *Western Ghats is pivotal to life on Earth*

**TOI Editorials**

The word biodiversity is thrown about rather casually in conversation about the planet. Including by most politicians and developers, who are steadily, incrementally, irreversibly building homes & roads & a million infra, unscientifically, out of forests, hills, rivers and swamps. For them, true conservation is being 'anti-development', thus anti-people. Yet, like the Wayanad landslide in Western Ghats proved, brute development without conservation is what is anti-people.

Biodiversity – as Western Ghats conservationist Madhav Gadgil demonstrated in his life's work – has never been an option. It is the core that makes life on Earth possible, sustainable and resilient, for all creatures great and small. Its variety of habitats and species, and genetic diversity within each species – the sheer abundance of life is what makes 1,600km of Western Ghats among the world's most biodiverse regions. Almost every year, a new species is still discovered under a rock or in a swamp, in a river or on an outcrop. Imagine that researcher's delight who discovered a living fossil fish in Kerala, unchanged for millennia. Or the plant that's survived since before dinosaurs walked. Imagine the gene pool: more than half the tree types and fish species here can be found nowhere else on Earth. Western Ghats habitats change with altitude, rainforests to grasslands to mountains, and its centrality to life on Earth cannot be overstated. Yet, the range is an environmental hotspot – continuously threatened by unthinking humans.

---

THE ECONOMIC TIMES

*Date: 10-01-26*

# Gadgil's Communities Are Natural Allies

**ET Editorial**

For a Harvard-trained scientist working at a top-tier institution like IISc, it would have been easy for Madhav Gadgil to remain confined to labs, conferences and government panels. But Gadgil, one of the world's most influential ecologists who passed away earlier this week, thought differently. He moved effortlessly among these spaces and farmers, forest residents and young students, patiently revealing the deep, often fragile, connections between people and nature. Resisting labels such as 'pro-conservation' or 'anti-development',

Gadgil placed people at the centre of ecological thinking. He argued that local communities were not obstacles to conservation but its most vital stewards.

He was also an institution builder and mentor. Gadgil established Centre for Ecological Sciences at IISc, and like a banyan tree, he offered shade, stability and a meeting ground for generations of ecologists. He chaired Western Ghats Ecology Expert Panel, which called for treating the range as a single ecological entity and regulating environmentally destructive activities. The report triggered apolitical storm. But subsequent floods and landslides in the region have only underscored the prescience of its warnings.

Among Gadgil's most enduring contributions was his work on People's Biodiversity Registers. Long before 'citizen science' became a buzzword, he envisioned communities documenting their ecological knowledge. These registers sought to rebuild fading connections between people and their landscapes, nurturing pride in local natural heritage. In a world increasingly shaped by climate change, Gadgil's vision of environmentalism — participatory, humane, and grounded equally in science and justice — remains profoundly relevant.

---

दैनिक भास्कर

***Date: 10-01-26***

# हमें तेजी से वैकल्पिक व्यवस्था तलाशनी होगी

**संपादकीय**

अमेरिका का प्रस्तावित 'रूस पर प्रतिबंध कानून, 2025' राष्ट्रपति को थर्ड पार्टी देशों द्वारा रूस से तेल की खरीद जारी रखने पर उनके खिलाफ वस्तु और सेवाओं पर ड्यूटी बढ़ाने की शक्ति देता है। यहां नई बात यह है कि इसमें सेवाओं को शामिल किया गया है। तो क्या ट्रम्प भारत से भी टेक्स्टाइल और दवाओं आदि के अलावा मोबाइल निर्यात (जो फिलहाल 50% टैरिफ से मुक्त है), कॉल सेंटर्स, कोडिंग या टेस्टिंग जैसे सेवा उपक्रम बंद करेंगे? वस्तुओं को तो सीमा पर रोककर उनसे टैक्स लिया जा सकता है, लेकिन सेवाओं की कोई सीमा नहीं होती। माना जा रहा है कि ऐसे में ट्रम्प उन अमेरिकी कंपनियों पर टैक्स लगाएंगे, जो भारत से सेवाएं ले रही हैं। अगर सेवा क्षेत्र में ट्रम्प ने कोई छेड़छाड़ की तो अमेरिकी कंपनियां भारत में अपना कारोबार ला सकती हैं। अमेरिका में बिकने वाले मोबाइल का बड़ा हिस्सा भारत में बनता है। एपल और सैमसंग अपने उत्पाद भारत में ही बनाते हैं और उन्हें यूएस निर्यात करते हैं। ट्रम्प की मजबूरी होगी सेवा और भारत में बनने वाले आईटी उत्पादों को उच्च टैरिफ से मुक्त करना। बहरहाल, ट्रम्प के आने से पूर्व भारत के कुल निर्यात में अमेरिका का योगदान लगातार 17-18% का रहा था जबकि आयात उसके मुकाबले काफी कम मौजूदा हालात को देखते हुए भारत को बहुत तेजी से वैकल्पिक व्यवस्था तलाशनी होगी।

---

***Date: 10-01-26***

# प्रवासियों और शरणार्थियों को खतरा क्यों मान रही है दुनिया ?

**कौशिक बसु, ( विश्व बैंक के पूर्व चीफ इकोनॉमिस्ट )**

नए साल में भी दुनिया की तस्वीर स्याह ही नजर आती है। बढ़ते संघर्ष और उभरता सत्तावाद संस्थाओं को कमजोर कर रहे हैं। बढ़ती विषमता आर्थिक असुरक्षा को गहरा रही है। लेकिन सबसे अधिक हतोत्साहित करने वाली घटना 'अदर्स' यानी दूसरों के प्रति बढ़ती नफरत है। दुनिया के तमाम देशों में राजनेता प्रवासियों और शरणार्थियों को एक खतरे के रूप में पेश कर रहे हैं।

यह स्थिति डब्ल्यूएच ऑडेन की कविता 'रिफ्यूजी ब्लूज' की याद दिलाती है। द्वितीय विश्व युद्ध की पूर्वसंध्या पर लिखी इस कविता में एक सार्वजनिक सभा में वक्ता चेतावनी देता है कि 'अगर हम उन्हें भीतर आने देंगे, तो वे हमारी रोजी-रोटी छीन लेंगे।' इस 'जेनोफोबिया' का उभार किसी शून्य में नहीं हो रहा है। यह एक गहरे संरचनात्मक बदलाव से प्रेरित है।

हम भूल जाते हैं कि राष्ट्र-राज्य एक अपेक्षाकृत नया विचार है, जो उस समय उभरा था जब यात्राएं धीमी और सीमित हुआ करती थीं। उस दौर में दुनिया को अलग-अलग समुदायों के समूह के रूप में देखना तार्किक था। तब हर समुदाय अपने सदस्यों के कल्याण के लिए स्वयं जिम्मेदार था। इन इकाइयों को प्रभावी ढंग से संचालित करने के लिए एक साझा पहचान आवश्यक थी और इसी के लिए राष्ट्रवाद उभरा।

लेकिन वैश्वीकरण ने इस व्यवस्था पर लगातार दबाव डाला है। वस्तुओं, पूंजी, सूचनाओं और लोगों की अपेक्षाकृत मुक्त आवाजाही- और उसके साथ डिजिटल क्रांति- ने कंपनियों, श्रमिकों और उपभोक्ताओं को सीमाओं के पार जुड़ने में सक्षम बना दिया है। विडंबना यह है कि यही बात आज के धुर-राष्ट्रवाद को हवा दे रही है। यह उस मॉडल को पुनर्जीवित करने का प्रयास है, जिसे दुनिया पीछे छोड़ चुकी है।

हम इसे पहले भी देख चुके हैं। नस्लीय श्रेष्ठता के दावे किसी जमाने में सामान्य माने जाते थे, लेकिन आज वे त्याज्य समझे जाते हैं। लेकिन आज भी लोगों का अपने-अपने देशों को दुनिया का सर्वश्रेष्ठ बताना आम है, जबकि समय के साथ राष्ट्रीय सर्वोच्चता के ऐसे दावे भी उतने ही असभ्य और अक्षम्य प्रतीत होंगे।

इस बदलाव की रूपरेखाएं दशकों पहले ही दिखाई देने लगी थीं। 1992 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'द ट्वाइलाइट ऑफ सॉवरेन्टी' में वॉल्टर रिस्टन ने भविष्यवाणी की थी कि राष्ट्रीय सरकारें धीरे-धीरे अपनी प्रासंगिकता खो देंगी। उनके अनुसार, हमारा सामूहिक भविष्य लगातार उन लोगों के हाथों में जा रहा है, जो दूरसंचार और कंप्यूटरों के जरिये पूरे ग्रह को जोड़ रहे हैं और उन बैंकरों के हाथों में भी, जो वैश्विक इलेक्ट्रॉनिक ढांचे के माध्यम से पूंजी का लेनदेन करते हैं।

जैसे एक न्यायपूर्ण दुनिया के निर्माण के लिए दासता और नस्लीय श्रेष्ठता की अस्वीकृति आवश्यक थी, उसी तरह आने वाले समय में राष्ट्रवाद के अहंकार को त्यागना भी अनिवार्य हो सकता है। रबींद्रनाथ ठाकुर बार-बार सीमाओं से मुक्त दुनिया की कल्पना करते रहे थे। 1917 के एक निबंध में उन्होंने तर्क दिया था कि भले ही राष्ट्र-राज्य एक व्यावहारिक

आवश्यकता बना रहे, लेकिन हमें अंततः उस दिन की आकांक्षा करनी चाहिए जब हमारी प्राथमिक पहचान केवल 'मानव' हो।

पं. नेहरू ने भी इस दृष्टि की शक्ति को पहचाना था। लेकिन भले ही हम सार्वभौमिकता के नैतिक पक्ष को स्वीकार कर लें और यह मान लें कि वैश्विक अर्थव्यवस्था कितनी गहराई से आपस में जुड़ चुकी है, फिर भी सवाल बना रहता है कि क्या सीमाओं से मुक्त दुनिया वास्तव में संभव है? आखिरकार, राष्ट्रवाद ने आगे बढ़ने और उत्कृष्टता हासिल करने की एक शक्तिशाली प्रेरणा भी तो देशों को दी है, जिसने विकास और इनोवेशन को गति देने में मदद की है।

तीसरी शताब्दी ईसा-पूर्व के यूनानी स्टोइक दार्शनिक क्रिसिप्पस ऑफ सोली एक उपयोगी दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। अत्यंत सादगीपूर्ण जीवन जीने वाले क्रिसिप्पस नैतिक जीवन को समझाने के लिए प्रतिस्पर्धी खेलों का रूपक इस्तेमाल करते थे। अमेरिकी दार्शनिक टैड ब्रेनन के शब्दों में, वे धक्का-मुक्की रहित नैतिकता के पक्षधर थे, जिसका अर्थ यह है कि प्रतिस्पर्धी जीतने का प्रयास करें, लेकिन केवल खेल के नियमों के भीतर रहकर। ऐसी परिस्थितियों में प्रतिस्पर्धा-मित्रता, सहयोग और साझा उद्देश्य के साथ सह-अस्तित्व में रह सकती है। निस्संदेह, सीमाहीन दुनिया अभी दूर का सपना है। फिलहाल, हम जो कर सकते हैं, वह है मौजूदा सुपरनेशनल संस्थाओं को मजबूत करना- जैसे संयुक्त राष्ट्र, ब्रेटन वुड्स संस्थान और अंतरराष्ट्रीय आपराधिक न्यायालय। ऐसे समय में, जब राष्ट्रवाद अंतरराष्ट्रीय सहयोग की नींव को कमजोर कर रहा है, इन संस्थाओं की मजबूती अत्यंत महत्वपूर्ण है।

---

दैनिक जागरण

***Date: 10-01-26***

# मनरेगा में भ्रष्टाचार

**संपादकीय**

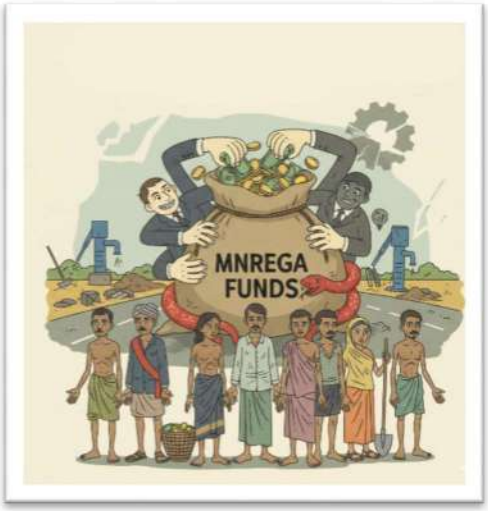


ग्रामीण विकास मंत्रालय के आंतरिक आडिट के चलते मनरेगा में भ्रष्टाचार के जैसे मामले सामने आए, वे चौंकाने वाले हैं। चालू वित्त वर्ष में देश के केवल 55 जिलों में कराए गए ऑडिट में वित्तीय गड़बड़ी के 11 लाख से ज्यादा मामले पकड़े गए, जिनमें 300 करोड़ रुपये से अधिक की हेराफेरी हुई। कोई भी अनुमान लगा सकता है कि जब केवल 55 जिलों में आठ माह में मनरेगा के तहत कराए गए कामों में इतनी गड़बड़ी देखने को मिली तो देश भर के सात सौ से अधिक जिलों में क्या स्थिति होगी?

साफ है कि निर्धन तबके के लोगों को रोजगार देने के नाम पर लूट हो रही थी और कोई उसे रोकने वाला नहीं था। जिस तरह यह सामने आया कि जन कल्याण के नाम पर हो रहे भ्रष्टाचार में ठेकेदार, अधिकारी से लेकर बैंक

मैनेजर तक शामिल थे, उससे यही स्पष्ट होता है कि सरकारी धन के बंदरबाट का एक तंत्र विकसित हो गया था।

हालांकि रह-रहकर ऐसे सवाल उठते थे कि आखिर मरनेगा के तहत बुनियादी विकास के कितने ठोस काम हो रहे हैं, लेकिन उन पर कभी ध्यान नहीं दिया गया? इसी तरह इस सवाल का भी जवाब नहीं दिया गया कि रोजगार के नाम पर कब तक गड्ढे खोदे और भरे जाते रहेंगे? ऐसे सवालों के जवाब मांगने वालों को प्रायः यह सुनने को मिलता था कि उन्हें गरीबों के उत्थान की योजना रास नहीं आ रही है।

कई बार तो मनरेगा में किसी तरह के बदलाव के सुझाव को इसलिए अनदेखा कर दिया जाता था कि इस योजना में महात्मा गांधी का नाम जुड़ा था। अभी हाल में जब मोदी सरकार ने इस योजना के नाम के साथ उसके रूप-स्वरूप में भी बदलाव किया तो विरोध में यह भी कहा गया कि इस सरकार को गांधी जी के नाम से बैर है। स्वाभाविक रूप से कांग्रेस एवं अन्य विपक्षी दलों ने सबसे अधिक विरोध किया, लेकिन उनके पास भ्रष्टाचार संबंधी सवालों का कोई जवाब नहीं था।

कहीं ऐसा तो नहीं कि राज्य सरकारें मनरेगा में व्याप्त भ्रष्टाचार की इसलिए अनदेखी कर रही थीं कि इस योजना के तहत केंद्र सरकार का अंशदान 90 प्रतिशत था? सच जो भी हो, इसकी अनदेखी न की जाए कि आम तौर पर राज्य सरकारें उन योजनाओं के क्रियान्वयन में गंभीरता नहीं दिखातीं, जिनका पैसा केंद्र से मिलता है। ऐसी योजनाएं भ्रष्टाचार का भी शिकार अधिक होती हैं।

अपने देश में विभिन्न सरकारी योजनाओं के तहत कागजों पर काम दिखाकर उसका पैसा हड़प लेना एक पुरानी बीमारी है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि इस बीमारी से छुटकारा नहीं मिल पा रहा है। यह ठीक है कि मनरेगा के नए स्वरूप वीबी-जीरामजी के तहत केंद्र सरकार ने भुगतान में पारदर्शिता के साथ ठोस बुनियादी कामों पर जोर दिया है, लेकिन उसके साथ राज्यों को भी सुनिश्चित करना होगा कि वास्तव में ऐसा ही हो।

---

बिज़नेस स्टैंडर्ड

***Date: 10-01-26***

# वैश्विक व्यवस्था का विखंडन

**संपादकीय**

अमेरिकी राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप कुछ मामलों में हमेशा स्पष्ट रहे हैं। उनके दृष्टिकोण में बहुपक्षीय मंच अमेरिका की संप्रभुता को कमजोर करते हैं और सीधे उनके 'मेक अमेरिका ग्रेट अगेन' के एजेंडे से टकराते हैं। इसी सोच के चलते उन्होंने कई अंतरराष्ट्रीय संस्थानों से बाहर निकलने का निर्णय लिया, जिनमें से अनेक संयुक्त राष्ट्र की व्यवस्था के अंतर्गत आते हैं। अतीत में उनके प्रशासन ने अमेरिका को जलवायु परिवर्तन पर पेरिस समझौते जैसे ढांचों से बाहर निकाला है, संयुक्त राष्ट्र सहित अंतरराष्ट्रीय बकायों का भुगतान रोका है, और

विश्व व्यापार संगठन को प्रभावी रूप से पंगु बना दिया है। लेकिन उनकी नवीनतम कार्रवाई इससे भी आगे बढ़ गई है।

गौर करने की बात है कि अमेरिका हमेशा से कई बहुपक्षीय मंचों में अपेक्षाकृत अनिच्छुक प्रतिभागी रहा है। अमेरिका की राजनीति में एक गहरी संयुक्त राष्ट्र-विरोधी प्रवृत्ति रही है, जिसमें 'ब्लैक हेलीकॉप्टरों' के जरिये संयुक्त राष्ट्र की सेनाओं के असहाय ग्रामीण अमेरिकियों पर हमला करने की निराधार अफवाहें शामिल रही हैं। यह षड्यंत्रकारी दुनिया का एक स्थायी हिस्सा है जिसने ट्रंप के आंदोलन को जन्म दिया। इसके अलावा, मुख्यधारा के अमेरिकी राजनेता भी अंतरराष्ट्रीय न्यायालय जैसे संगठनों में शामिल होने में सतर्क रहे हैं, यह मानते हुए कि यह अमेरिका में असंवैधानिक होगा या उसकी संप्रभुता को छीन लेगा।

इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो ट्रंप केवल अमेरिकी राजनीति की एक मौजूदा धारा को एक कदम आगे बढ़ा रहे हैं। यह भी ध्यान देने योग्य है कि राष्ट्रपति जो बाइडन ने पेरिस समझौते में दोबारा प्रवेश तो किया, लेकिन उदाहरण के लिए, उन्होंने अपने पूर्ववर्ती द्वारा विश्व व्यापार संगठन को पहुंचाए गए नुकसान को ठीक करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया।

ऐसे में इस नवीनतम बदलाव का विश्लेषण केवल ट्रंप की विदेशियों के प्रति जाहिर नापसंदगी से अधिक गहराई में जाकर किया जाना चाहिए। इस सूची में कुछ संगठन ऐसे हो सकते हैं जिन्हें निष्क्रिय या अपेक्षाकृत निरर्थक माना जा सकता है, लेकिन अन्य निश्चित रूप से ऐसा नहीं हैं। उदाहरण के लिए, संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन रूपरेखा समझौता (यूएनएफसीसीसी) अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जलवायु कार्रवाई में सहयोग के लिए एक बुनियाद की तरह है।

इससे पूर्ण रूप से बाहर निकलना, साथ ही जलवायु परिवर्तन पर अंतर-सरकारी समिति (आईपीसीसी) से भी, जो वैज्ञानिकों द्वारा देखे गए वैश्विक ऊष्मीकरण के वास्तविक प्रभावों पर सारांश रिपोर्ट तैयार करती है, उन वैश्विक प्रयासों के लिए एक बड़ा झटका है, जिनका उद्देश्य औसत तापमान वृद्धि को 2 डिग्री सेल्सियस से नीचे रखना है। कुछ छोटे संगठन, उदाहरण के लिए महिला और बाल स्वास्थ्य पर काम करने वाले संगठन ट्रंप के इस निर्णय के परिणामस्वरूप पूरी तरह से वित्तीय सहायता से वंचित हो सकते हैं। इस खोई हुई क्षमता और फंडिंग की भरपाई करने का बड़ा बोझ यूरोपीय संघ और अन्य विकसित देशों पर पड़ेगा।

बड़ा सवाल यह है कि क्या अमेरिका का यह पीछे हटना इन संगठनों और उस अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था की वैधता को भी प्रभावित करेगा, जिसका वे प्रतिनिधित्व करते हैं। फिलहाल ऐसा प्रतीत नहीं होता। ट्रंप अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था को पुनः आकार देने और पुनर्गठित करने की कोशिश कर सकते हैं ताकि अमेरिका की प्रधानता को अधिक प्रत्यक्ष रूप से बनाए रखा जा सके। लेकिन अब तक उनकी कार्रवाइयां पूरी तरह विध्वंसकारी रही हैं। वे वैश्विक शासन को कमजोर कर सकती हैं, परंतु मौजूदा व्यवस्थाओं की वैधता को नहीं मिटातीं।

यदि वह वास्तव में एक कट्टरपंथी हैं, तो उन्हें एक प्रभावशाली वैकल्पिक कथा प्रस्तुत करनी होगी जिसमें फंडिंग और अन्य प्रतिबद्धताएं भी शामिल हों। ऐसा होता नहीं दिखता। स्पष्ट परिणाम यह होगा कि समय के साथ चीन उस भूमिका को निभाने के लिए आगे आएगा जिसे अमेरिका ने छोड़ दिया है। दूसरे शब्दों में, ट्रंप अमेरिका की संप्रभुता को मजबूत नहीं कर रहे हैं, बल्कि उसकी प्रधानता अपने सबसे बड़े रणनीतिक प्रतिद्वंद्वी को सौंप रहे हैं।

---

जनसत्ता

***Date: 10-01-26***

# सवालों का घेरा

**संपादकीय**

प्रवर्तन निदेशालय (ईडी) की कार्रवाई में निष्पक्षता, पारदर्शिता और विश्वसनीयता को लेकर अक्सर सवाल उठते रहे हैं । पिछले कुछ वर्षों से यह जांच एजंसी विपक्षी दलों के निशाने पर है । सर्वोच्च अदालत भी ईडी की कार्यप्रणाली पर असंतोष जाहिर कर चुकी है। मगर गुरुवार को पश्चिम बंगाल के कोलकाता में जो घटना हुई, उसमें न केवल ईडी, बल्कि राज्य सरकार भी सवालों के घेरे में है। केंद्रीय एजंसी की ओर से एक राजनीतिक परामर्श फर्म के दफ्तर पर छापे के दौरान खुद मुख्यमंत्री ममता बनर्जी का वहां पहुंचकर हस्तक्षेप करना निस्संदेह कई सवाल खड़े करता है। इस घटना को लेकर ईडी और मुख्यमंत्री के अपने-अपने तर्क हैं, लेकिन इस बात पर भी गंभीरता से विचार करने की जरूरत है कि आखिर इस तरह की स्थिति क्यों उत्पन्न हुई। केंद्र में सत्तारूढ़ भाजपा जहां जांच एजंसी की इस कार्रवाई को कानून के दायरे में बता रही है, वहीं तृणमूल कांग्रेस का आरोप है कि यह सब राजनीति से प्रेरित है।

दरअसल, विपक्षी दल लंबे समय से यह आरोप लगाते रहे हैं कि केंद्र सरकार राजनीतिक प्रतिशोध की भावना से केंद्रीय जांच एजंसियों का दुरुपयोग करती है। खासकर ईडी की कार्यप्रणाली को लेकर कई तरह के सवाल उठाए जाते रहे हैं। ऐसे में जांच एजंसी का भी यह कर्तव्य है कि वह खुद पर लगे आरोपों का विश्लेषण करे और ऐसे हालात पैदा न होने दे कि उसकी किसी कार्रवाई पर सवाल उठे । कोलकाता में छापे के बाद दोनों पक्षों के बीच जिस तरह से आरोप-प्रत्यारोप का दौर शुरू हुआ, वह लोकतंत्र के लिए शुभ संकेत नहीं है। तृणमूल कांग्रेस ने ईडी की इस कार्रवाई के खिलाफ कलकत्ता उच्च न्यायालय में याचिका दायर की है। तृणमूल कांग्रेस का आरोप है कि ईडी के छापे में पार्टी से जुड़े दस्तावेज के साथ विधानसभा चुनाव में उम्मीदवारों की सूची जब्त कर ली गई। मगर, इस बात पर भी गंभीरता से विचार करने की जरूरत है कि क्या कोई मुख्यमंत्री या मंत्री किसी केंद्रीय जांच एजंसी की कार्रवाई में इस तरह सीधे हस्तक्षेप कर सकता है ? इस तरह के टकराव से बचने के रास्ते तलाशने होंगे।

---

Live हिन्दुस्तान.com

***Date: 10-01-26***

# अशांति के अनेक मोर्चे

**संपादकीय**

डोनाल्ड ट्रंप की मुसलसल मनमानी, यूक्रेन - रूस युद्ध में आए दिन घातक हथियारों का इस्तेमाल, ईरान में बगावत, डेनमार्क की चेतावनी के अलावा भी ऐसे अनेक अफसोसनाक मोर्चे दुनिया में खुल गए हैं, जिनसे अमन-चैन मानो लुट गया है। कोई दोराय नहीं कि अमेरिका सबसे ताकतवर देश है और उसके फैसलों की आंच से आज पूरी दुनिया तप रही है। कम शब्दों में कहें, तो बीते वर्ष में शुरू हुए अमेरिका को फिर से महान बनाने के बेतरतीब अभियान ने संसार को संकट में डाल लिया है। संयुक्त राष्ट्र और विश्व बंधुत्व से जुड़ी अनेक महान वैश्विक परंपराओं की पालना अब सपना होती जा रही है। जो अमेरिका पहले दुनिया में हर अच्छी पहल में आगे बढ़कर योगदान देता था, वह करीब 66 वैश्विक जिम्मेदारियों वा संगठनों से हाथ पीछे खींच चुका है। अमेरिका ने ऐसी स्थिति पैदा कर दी है, जिसमें उसे न दुनिया के स्वास्थ्य की परवाह है और न पर्यावरण की। ऐसी तमाम अच्छी कोशिशों को डोनाल्ड ट्रंप दोटूक फिजूल ठहरा रहे हैं। कथनी करनी का अंतर और अमेरिका की दोहरी नीतियां भी बहुत नुकसान पहुंचा रही हैं।

वेनेजुएला पर हमले के बाद अमेरिका की निगाह ग्रीनलैंड पर है, लेकिन उसे सबसे तगड़ी धमकी या चेतावनी डेनमार्क की ओर से मिली है। डेनमार्क ने साफ इशारा कर दिया है कि अमेरिका अगर दुस्साहस दिखाता है, तो डेनमार्क ईंट का जवाब पत्थर से देगा। विश्व के लिए यह त्रासदी ही है कि ट्रंप के रुख में आए दिन परिवर्तन दिखने लगा है, दूसरे देशों को तालमेल बिठाने में बहुत परेशानी हो रही है। समय के साथ उनके बयान बदलते रहते हैं, लेकिन ज्यादा चिंता की बात तो यह है कि दूसरे देशों के नेता ओ के बारे में उनकी टिप्पणियां अक्सर कूटनीतिक भूचाल पैदा कर देती हैं। फ्रांस के राष्ट्रपति एमैनुएल मैक्रो हो या भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी, इन दो बड़े नेताओं के बारे में ट्रंप के बयानों पर आप गौर करेंगे, तो पाएंगे कि समस्याएं बढ़ रही हैं और समाधान कठिन होते जा रहे हैं। सबसे बड़ी बात कि दशकों की मेहनत से यूरोप और अमेरिका के बीच जो तालमेल बना था, उसे ट्रंप ने चौपट कर दिया है। पहले अमेरिका की एक आवाज पर यूरोपीय देश साथ खड़े हो जाते थे, लेकिन अब यूरोपीय देशों ने अपनी विदेश नीति को अपने अनुरूप बनाना शुरू कर दिया है।

भारत की भी चिंता बढ़ी है। अमेरिका अगर भारत पर 500 प्रतिशत टैरिफ थोपता है, तो उसका यह कदम शत्रुता से कम नहीं होगा। भारत के अपने हित हैं, जिनसे वह समझौता करने को तैयार नहीं है, लेकिन अमेरिका येन-केन-प्रकारेण भारत को समझौते के लिए मजबूर करना चाहता है। भारत को मजबूर करने के लिए ट्रंप पाकिस्तान के फौजी जनरल को दोस्त बता चुके हैं। ऐसी मौकापरस्त दोस्ती की वजह से ही आतंकवाद पाकिस्तान से चलकर अमेरिका पहुंच गया था, जिसके एक बड़े आका को अमेरिका ने पाकिस्तान में घुसकर खत्म किया। अब पाकिस्तान की ताकत अगर बढ़ेगी, तो दुनिया में सांप्रदायिकता का खतरा भी बढ़ेगा। भारत के लिए नई चुनौतियों के दिन आ रहे हैं और सामना करने के लिए भारतीय राजनीतिक एकता सबसे जरूरी होगी। जो लोग आज ट्रंप की बातों को दोहरा देते हैं, हो सकता है कि भविष्य में उन्हें

पछताना पड़े। ट्रंप के कार्यकाल के अभी तीन वर्ष बचे हैं। पता नहीं, इन तीन वर्षों में अमेरिका कितना महान बनेगा, पर जो अमेरिकी रंग-ढंग हैं, उनसे दुनिया में जगह-जगह बगावत और जंग हो जाए, तो अचरज नहीं। जरूरी है कि भारत सधे कदमों से आगे बढ़ता रहे।